विश्वभारती : हिंदी : हजारीप्रसाद द्विवेदी

विश्वभारती का शैक्षिक भ्रमण कार्यक्रम

दिनांक 15-16 फरवरी, 2024

स्मारिका

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैंक (कोलकाता)

संयोजक

यूको बैंक
(भारत सरकार का उपक्रम)
UCO BANK
(A Govt. of India Undertaking)
सम्मान आपके विश्वास का
Honours Your Trust

हजारीप्रसाद द्विवेदी
19 अगस्त 1907 - 19 मई 1979

अपनी सुदीर्घ परंपरा की समृद्धि से भी द्विवेदी जी का अंतरंग परिचय था और उसे ज्ञान-संपदा के समुचित नियोजन की कला भी उन्हें आयत्त थी। वे भली प्रकार जानते थे कि 'स्वर्गीय वस्तुएं धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं' और मनुष्य की वेदना-संवेदना से जुड़े बिना ज्ञान और कला का कुछ भी विधायक मूल्य नहीं होता धरती के यथार्थ और मनुष्य की वेदना को शीर्ष महत्व देते हुए भी द्विवेदी जी की मनुष्यता की अवधारणा उन वस्तुवादियों से सर्वथा भिन्न थी जो चिन्मय मूल्यों पर जड़ मूल्यों को तरजीह देते मानवीय संवेदना का तिरस्कार करने में संकोच नहीं करते।'

- डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र

विश्वभारती : हिंदी : हजारीप्रसाद द्विवेदी

शैक्षिक भ्रमण एवं विचार गोष्ठी

दिनांक 15-16 फरवरी, 2024

स्मारिका

संरक्षक

अश्वनी कुमार

प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी, यूको बैंक

संपादक

आलोक चतुर्वेदी

सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा), भारतीय स्टेट बैंक

स्थानीय प्रधान कार्यालय, कोलकाता

संपादकीय सहयोग

सत्येंद्र कुमार शर्मा, मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)

यूको बैंक, प्रधान कार्यालय, कोलकाता

श्री राजू रंजन, प्रबंधक (राजभाषा)

यूको बैंक, प्रधान कार्यालय, कोलकाता

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), कोलकाता

संयोजक

यूको बैंक

प्रधान कार्यालय राजभाषा विभाग

10, बी.टी.एम. सरणी, कोलकाता-700001

अनुक्रम

मेरी जन्मभूमि 6

हजारीप्रसाद द्विवेदी

हजारीप्रसाद द्विवेदी का द्विजत्व 10

अजयेन्द्रनाथ त्रिवेदी

एक परिचय : हजारीप्रसाद द्विवेदी 14

सूरज कुमार

शांतिनिकेतन : हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य का प्रेरणास्त्रोत 18

शुभजित चक्रवर्ती

... और अंत में 20

विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), कोलकाता के सचिवालय यूको बैंक, प्रधान कार्यालय, राजभाषा विभाग, 10 बीटीएम सरणी, कोलकाता-700001 की ओर से संपादित एवं प्रकाशित। आंतरिक परिचालन के लिए नि:शुल्क।

स्मारिका में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), कोलकाता के नहीं। इन विचारों से नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), कोलकाता की सहमति हो ही, यह आवश्यक नहीं है।

।। समर्पण।।

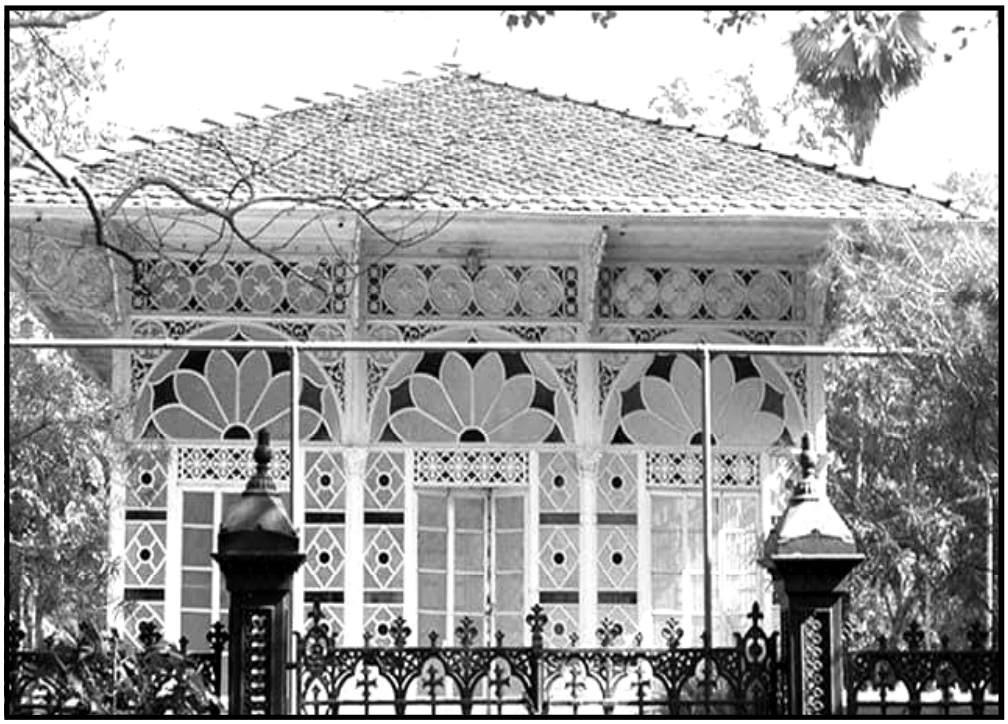

उपासना मन्दिर, शांतिनिकेतन

❖

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), कोलकाता

संदेश

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिंदी भाषा साहित्य के आकाश में कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा के भास्वर नक्षत्र हैं। भारतीय संविधान के निदेशानुसार वर्ष 1955 में गठित राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में उन्होंने आयोग को अपने अनुभवों से लाभान्वित किया।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित विश्वभारती में हिंदी अध्यापक के रूप में कार्यभार संभाल कर बौद्धिक ऊर्जा से स्पंदित भारत के इस प्रदेश में हिंदी के प्रति लोकचित्त को आकर्षित करने में आचार्य द्विवेदी का अनुपम योगदान था। विश्वभारती का हिंदी भवन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के हिंदी प्रेम का स्मारक तो है ही, यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के संगठन कौशल का प्रतिमान भी है।

विश्वभारती के उन्मुक्त वातावरण में, गुरुदेव की छत्रछाया तथा विभिन्न अनुशासनों के विदग्ध विद्वानों के सान्निध्य में प्राप्त अनुभव से आचार्य द्विवेदी ने अपना व्यक्तित्व गढ़ा। हिंदी के इस मूर्धन्य तपस्वी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को समझने के लिए विश्वभारती के तत्कालीन परिवेश को समझना आवश्यक है।

मुझे प्रसन्नता है कि नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक) कोलकाता के सदस्य कार्यालयों के राजभाषा अधिकारी विश्वभारती का शैक्षिक भ्रमण करने जा रहे हैं तथा इस अवसर पर 'हिंदी : विश्वभारती : हजारीप्रसाद द्विवेदी' इस शीर्षक से एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

इस सराहनीय कार्य के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं देता हूँ।

(अश्वनी कुमार)
अध्यक्ष, नराकास (बैंक) कोलकाता
प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी
यूको बैंक, कोलकाता

हिंदी विभाग
विश्वभारती

शांतिनिकेतन
731235
पश्चिम बंगाल

तिथि : 02/02/2024

शुभकामना संदेश

यूको बैंक के नेतृत्व में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक) कोलकाता के माननीय कर्मियों का शांतिनिकेतन भ्रमण और रवींद्रनाथ ठाकुर, हिन्दी भवन एवं पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के अंतर्संबंधों पर परिचर्चा आयोजित करना अत्यंत सुखद एवं सराहनीय पहल है। इस अवसर पर यादगार स्वरूप एक स्मारिका का प्रकाशन शुभ संकल्पों का द्योतक है। मैं हिन्दी विभाग सहित विश्वभारती परिवार की ओर से अशेष शुभकामनाएँ देता हूँ। साथ ही राजभाषा हिन्दी के उन्नयन के लिए आप सभी बन्धुओं की सद्भावना की प्रशंसा करता हूँ।

02/02/2024

डॉ सुभाष चन्द्र राय
हिन्दी विभागाध्यक्ष
विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

अध्यक्ष / Head
हिन्दी विभाग/Department of Hindi
विश्वभारती / Visva-Bharati
शांतिनिकेतन / Santiniketan

संपादकीय

आधुनिक हिंदी भाषा और साहित्य के संबंध में चर्चा में, अनेक कारणों से, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी याद आ जाते हैं। हम साहित्य और समाज के बीच के अंतर्संबंधों को समझने की चेष्टा करते हैं या भारतीय सौन्दर्य मीमांसा का प्रश्न उठाते हैं या फिर मध्यकालीन संत साहित्य के मर्म को समझना चाहते हैं, अट्टहास करते हुए हजारीप्रसादजी हमारे सामने आ जाते हैं। मानो वे कहना चाहते हैं कि मुझको समझे बिना तुम इस प्रश्नों से टकराते ही रह जाओगे, एकांतिक समाधान नहीं पा सकोगे।

सर्जनात्मक लेखन से हिंदी साहित्य को अप्रतिम योगदान देने वाले हजारीप्रसाद द्विवेदी एक आकाशधर्मा गुरु थे। उन्होंने स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी तथा अपने पक्ष में लोक से, शास्त्र से तथा पुरातत्व से प्रमाण जुटाए। वे किंवदंती टीकाकार मल्लीनाथ की परंपरा के आचार्य थे–नामूलं लिख्यते किंचित्। फिर भी बात न बने तो प्रमाण जुटाने में वे निजंधरी गाथाओं के शरण ले लेते थे। और अंत में, गल्प तो था ही उनका ब्रह्मास्त्र। वे हिंदी साहित्य के बाणभट्ट थे, अपने युग के भरतमुनि या फिर कुछ और...

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वर्ष 1930 में विश्वभारती में हिंदी के अध्यापक होकर आए। यहाँ दो दशकों तक उन्होंने पढ़ा-पढ़ाया। जी हाँ, पढ़ा भी और पढ़ाया भी। तब विश्वभारती विद्या की विभिन्न सरणियों के महारथियों से भरी पड़ी थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर सदृश ज्योतिष्क की प्रभा में आलोकित अध्यापक मंडली में, विधुशेखर भट्टाचार्य, दीनबंधु एंड्रूज़, क्षितिमोहन सेन उल्लेखनीय हैं। विश्वभारती का आश्रम-परिवेश विद्यासाधना को पुष्ट करता था। यहाँ आकर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कालजयी कृतियों से हिंदी संसार को समृद्ध किया। कबीर पर उनका मूल्यांकन तथा हिंदीतर भाषा-भाषी छात्रों के लिए तैयार नोट (जो हिंदी साहित्य की भूमिका नाम से प्रकाशित हुआ) यहीं संभव हुआ। सिद्धों तथा नाथपंथियों की साधना का उनका तलस्पर्शी अध्ययन यहीं, विश्वभारती में ही, हुआ। विश्वभारती पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने राष्ट्रव्यापी ख्याति यहीं रहकर पाई।

हम समझते हैं हजारीप्रसाद द्विवेदी यदि नहीं होते तो आधुनिक हिंदी साहित्य वैसा न होता। हमारी मान्यता है कि यदि विश्वभारती का परिवेश तथा गुरुदेव का सान्निध्य न होता तो हजारीप्रसाद नहीं होते। इसी भाव से भावित हमने एक शैक्षिक भ्रमण का कार्यक्रम बनाया तथा 'विश्वभारती : हिंदी : हजारीप्रसाद द्विवेदी' विमर्श की संभावना टटोली। अब यह संभावना कितनी भाव्य है कितनी अभाव्य यह आप तय करें।

आलोक चतुर्वेदी

(आलोक चतुर्वेदी)

सहायक महाप्रबंधक, राजभाषा

भारतीय स्टेट बैंक, स्थानीय प्रधान कार्यालय

कोलकाता

मेरी जन्मभूमि

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

जिस गाँव में साहित्य चर्चा करने के लिए बैठा हूँ उसका नाम ओझवलिया है। यह मेरी जन्मभूमि है। इस गाँव के एक हिस्से को 'आरतदुबे का छपरा' कहते है। यही वस्तुतः मेरी जन्मभूमि है, परन्तु वह हमेशा से इस गांव का हिस्सा ही रहा है। 'आरतदुबे' मेरे ही पूर्व पुरुष थे। उन्होंने ही इस छोटे हिस्से को बसाया था; पर बसाने के लिए थोड़ी-सी भूमि ओझबलिया गाँव के मालिक ओझा लोगों ने उन्हें माफी में दी थी। अब दोनों ही हिस्से एक हो गए हैं। इस तरफ गांव के नाम के साथ दो शब्द बहुत जुड़े दिखते है–'अवली' मौर 'छपरा'। 'छपरा' की परम्परा पूरब में छपरा शहर तक जाकर समाप्त हो जाती है और 'अवली' गावों की परंपरा पश्चिम में 'बलिया' तक आती है। मेरा गांव संयोग से छपरा और अवली का योग है। मुझे इन दोनों शब्दों में इस भूभाग का चिरन्तन इतिहास स्पष्ट रूप से समझ में आता है। वस्तुतः बलिया और छपरा नाम के नगरों के मध्यवर्ती भूभाग को गंगा और सरयू जैसी दो महानदियों का कोप बराबर सहते रहना पड़ा है। अधिकांश गांव सचमुच ही छप्परों के बने हैं, क्योंकि हर साल गंगा की बाढ़ में उनके बह जाने की आशंका रहती है। इस बाढ़ के कारण ही कई-कई गांव प्रायः एक जगह झुण्ड बाँधकर बसने को बाध्य होते हैं। इन ग्रामों की 'अवली' को कोई भी पर्यवेक्षक आसानी से लक्ष्य कर सकता है । तो इस भूभाग का इतिहास ही निरन्तर बनते और मिटते रहने का है। इसीलिए यहां के निवासियों में एक प्रकार 'कुछ परवा नहीं'–भाव विकसित हो गया है। एक अजीब प्रकार की मस्ती और निर्भीकता इन लोगों के चेहरे पर दिखती है। विपत्ति के थपेड़ों से चेहरे सहज ही नहीं मुरझाते। कठिनाइयों में से रास्ता निकाल लेना इनका स्वभाव हो गया है। इतिहास की यही विरासत इन्हें मिली भी है, नहीं तो गंगाजी के दोनों किनारों के कई मील की दूरी में न तो यहां कोई पुरातत्त्व का अवशेष बच पाया है, न साहित्य का इतिहास लिखने वालों को प्रलुब्ध करने लायक कोई महत्त्वपूर्ण सामग्री।

जब मैं अपनी विद्यार्थी-अवस्था में हिन्दी या संस्कृत का इतिहास पढ़ता था तो मैं आश्चर्य और क्षोभ से देखता था कि हमारे इस भूभाग की कोई चर्चा उसमें नहीं है। लेकिन मजेदार बात यह कि इस भूमि ने संस्कृत के इतने विद्वान् पैदा किए है कि कई गांव 'लहुरी काशी' (छोटी काशी) होने का दावा करते हैं और ठीक करते हैं। मेरे गांव से थोड़ी ही दूर पर 'छाता' नाम का एक गांव है, जिसे यहाँ 'लहुरी काशी' कहते हैं। बहुत दिनों से मेरे मन में यह क्षोभ संचित था। में सोचता था कि क्या साहित्य में इस विद्वत्प्रसू भूमि की कोई देन नहीं है? अचानक आज साहित्य चर्चा करने का अवसर पाकर मेरे चित्त में वही क्षोभ सावन के मेघ की भाँति घुमड़ पड़ा है । क्या यह सदा का उपेक्षित भूभाग है?

बुद्धदेव जहां-जहां गए थे उन स्थानों का यदि मानचित्र बनाया जाय तो निस्सन्देह उनका पदार्पण इधर हुआ होगा, पर प्रमाण कहां है? स्कन्द-गुप्त की बिराट बाहिनी भीतरी गाँव होते हुए गई थी। निस्सन्देह उन्होंने इस भूमि पर कोई-न-कोई महत्त्वपूर्ण घोषणा की होगी, पर सबूत कहां है? कुमार-जीव के पिता निस्सन्देह इसी भूभाग के नर-रत्न थे, पर मैं कैसे बताऊँ कि वे किस गांव के रहने वाले थे! गंगा और सरयू के जल सन्निपात से धौत भूमि की शोभा देखने के लिए जब कालि-दास निकले होंगे तो क्या उड़कर चले गए होंगे? निस्सन्देह इन गांवों में कहीं-न-कहीं ठहरे होंगे। बहुत संभव है कि रघुवंश के महत्त्वपूर्ण सर्गों का कोई हिस्सा इधर ही लिखा गया हो; परन्तु मेरी बात का विश्वास कौन करेगा? मैं साहित्य की चर्चा करने का अवसर पाकर असल में उतना प्रसन्न नहीं हूँ जितना होना चाहिए। भारतवर्ष के धारावाहिक साहित्य में हमारे इस भूभाग का क्या महत्व होगा भला?

अच्छा समझिए या बुरा, मेरे अन्दर एक गुण है, जिसे आप बालू में से तेल निकालना समझ सकते हैं। मैं बालू में

से भी तेल निकालने का सचमुच ही प्रयत्न करता हूँ, बशर्ते कि वह बालू मुझे अच्छी लग जाय। और यह बात अगर छिपाऊँ भी तो कैसे छिप सकेगी कि मैं अपनी जन्मभूमि को प्यार करता हूँ–'नेह कि गोइ रहै सखी लाज सों? कैसे बंधे जल जाल के बांधे?' मेरा विचार यह है कि साहित्य का इतिहास कुछ बड़े-बड़े व्यक्तियों के उद्‌भव और विलय के लेखे-जोखे का नाम नहीं है। वह जीवंत मनुष्य के धारावाहिक जीवन के सारभूत रस का प्रवाह है। मेरे गाँव में जो जातियां बसी है वे किसी उजड़े महल या गड़ी हुई ईंटों से कम महत्त्वपूर्ण तो है ही नहीं, अधिक महत्वपूर्ण है। मेरे इस छोटे से गांव में भारतवर्ष का बहुत बड़ा सांस्कृतिक इतिहास पढ़ा जा सकता है। ब्राह्मणों की बात तो बहुत कुछ लोग जानते भी है, (यद्यपि कम लोग ही यह जानते हैं कि वे कितना कम जानते हैं!)

मेरे गांव में भड़भूजे का पेशा करने वाली 'कान्दू' जाति है, जो संस्कृत 'कान्दविक' शब्द से संबद्ध है। गुप्त सम्राटों ने इन्हें वैश्य की मर्यादा दी थी, ऐसा मैंने किसी प्राचीन लेख में पढ़ा है। आपको एक विनोद की बात बताऊँ। एक बड़े अच्छे बंगाली पंडित ने कलाओं के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में दस-बारह पन्नों में 'कंदु-पक्व' अन्न की कला की विवेचना है। धर्मशास्त्रों के अनुसार कंदु-पक्व अन्न-स्पर्श दोष से दूषित नहीं होता। उक्त बंगाली पंडित ने अनेक कोशों और स्मृतियों के वचन उद्धृत करके यह साबित करना चाहा कि 'कंदु-पक्व' अन्न पावरोटी जैसी कोई चीज होती थी! अगर वे हमारे गांव में आ गए होते तो उन्हें इतने परिश्रम के बाद इतनी गलत-सी चीज सिद्ध करने की कोई जरूरत ही नहीं होती। 'कंदु' इन्हीं कान्दुओं के भाड़ का नाम है! कौन नहीं जानता कि भड़भूजे की भुनी हुई सामग्री स्पर्श-दोष से रहित होती है! जिन पंडितजी की बात लिख रहा हूँ उनकी विद्वत्ता और बहुश्रुतता का मैं कायल हूँ और इसलिए मुझे थोड़ा-थोड़ा गर्व होता है कि मेरा गांव इतने बड़े पंडित के ज्ञान में थोड़ा-सा अंश और जोड़ सकता था! फिर हमारे गांव में कलबार या प्राचीन 'कल्यपाल' लोगों की बस्ती है, जो एकदम भूल गए हैं कि उनके पूर्वज कभी राजपूत सैनिक थे और सेना के पिछले हिस्से में रह कर 'कल्यवर्त' या 'कलेउ' की रक्षा करते थे। न जाने किस जमाने में इन लोगों ने तराजू पकड़ी थी और अब पूरे 'बनिया' हो गए हैं। ये क्या पुरातत्व विभाग के किसी ईंट-पत्थर से कम मूल्यवान हैं? मेरे गांव में और भी बनिया जाति के लोग हैं। उनकी परम्परा सुनता हूँ तो मुझे रसेल साहब की वह बात याद आए बिना नहीं रहती कि मध्यप्रान्त में एक भी बनिया जाति उन्हें ऐसी नहीं मिली, जिसकी प्राचीन परम्परा किसी-न-किसी राजपूत कुल से सम्बद्ध न हो। मेरे गांव की परम्परा भी उनका समर्थन करती है। एक जाति यहां बसती है-तुरहा। जातियों की तालिका में इनका नाम तो मिल जाता है, पर किसी नृतत्त्व-शास्त्रीय विवेचन में मैने इनकी चर्चा नहीं पढ़ी। मेरा अनुमान है कि यह जाति आर्यों और गोंड़ों के मिश्रण की एक कड़ी है। नृत्तत्त्वशास्त्र के अध्येता इनको अपनी अधीति का उपयोगी विषय बना सकते हैं। अपने गांव के धोबियों के नृत्यगीत में मुझे कोई बड़ी भूली हुई परम्परा का स्मरण हो आता है। मेरे गांव की सबसे मनोरंजक जाति जुलाहों की है । इनके पुरोहित भी मेरे गांव में हैं । मैंने 'कबीर' नामक अपनी पुस्तक में जुलाहों के साथ नाथ परम्परा के योग का उल्लेख किया है। अपने गांव की ही एक मजेदार बात मैं उस पुस्तक में लिखना भूल गया था। जुलाहों के पुरोहित यहां 'साईं' कहे जाते हैं। साईं अर्थात् स्वामी। नाथ परम्परा में गुरु को 'नाथ' या 'स्वामी' कहते थे। 'गोरखबानी' में गोरखनाथ मछन्दरनाथ को बराबर 'साईं' कहकर संबोधन करते हैं। अब वे लोग पक्के मुसलमान हो गए हैं। केवल नाम में अपनी पुरानी स्मृति ढोते आ रहे हैं । हमारे गांव के शाक-द्वीपीय मग ब्राह्मण भी बहुत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जाति के हैं । शक-द्वीप सम्भवतः आधुनिक सगडियाना हैं, जहां के 'मगी' लोग सारे संसार में तंत्र-मन्त्र के लिए प्रख्यात थे। सुना है, 'ओल्ड टेस्टामेंट' में भी इनकी चर्चा है। अंग्रेजी में 'मैजिक' शब्द में भी इन मगों की स्मृति रह गई है। भारतवर्ष में यह जाति ब्राह्मण की ऊँची मर्यादा पा सकी है। और सच पूछिए तो ये लोग जहां-जहां गए थे वहीं आदर और सम्मान पा सके थे। अब भी ये सुसंस्कृत और चतुर हैं। फिर मेरे गांव में 'दुसाध' नाम की

अंत्यज जाति है। इनके रंगरूप को देख कर कोई नहीं कह सकता कि ये लोग अंत्यज जाति के हैं। अंग्रेज लोग जब इस देश में राज्यस्थापन में समर्थ हुए तो उन्हें कुछ अत्यन्त दुर्दान्त जातियों का सामना करना पड़ा था। उत्तर भारत के अहीर और दुसाध तथा बंगाल के डोम बड़े लड़ाके थे और कानून मानने से सदा इनकार करते थे। चतुर अंग्रेजों ने इन जातियों से चौकीदारी का काम लेकर इन्हें वश में किया। लोहा से लोहा काटने की नीति में अंग्रेज अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानता। अहीरों का बहुत कुछ अध्ययन हो चुका है। जाना गया है कि किसी जमाने में इस दुर्दान्त जाति का राज्य अनेक प्रदेशों में था। बंगाल के डोम सहजिया बौद्ध थे और किसी जमाने में प्रबल पराक्रान्त राज्यों के अधीश्वर थे। अधिकार वंचित होने पर ही ये लोग दुर्दान्त हो गये थे। दुसाधों के पुरातन इतिहास का कोई पता मुझे नहीं है, पर निस्सन्देह ये भी किसी अधिकार-च्युत बड़ी जाति के भग्नावशेष होंगे। मेरे गांव के दुसाध बड़े वीर, विनयी और भद्र हैं। ये अपनों को अब दुःशासन वंशज बताने लगे हैं। इनके देवता राह बाबा है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि हिन्दुओं की ग्रहमंडली में जो राहु देवता हैं वे इन्हीं की देन तो नहीं हैं। इतना तो निश्चित है कि मुझे श्री भगवत शरण जी उपाध्याय ने बताया है कि गुप्त नरपतियों के लेखों में' 'दुःसाध्य साधन' करने वाली जिस जाति का उल्लेख है उन्हीं का वर्तमान रूप यह दुसाध जाति है ।

राहु वैदिक देवता नहीं है। आज कल राहु के नाम पर चलने वाले वैदिक मन्त्र (काण्डात् काण्डं प्ररोहन्ती) में 'र' 'और' 'ह' अक्षरों के अतिरिक्त ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे राहु से सम्बद्ध माना जा सके। जो हो, यह जाति भारतीय इतिहास की निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण देन है। कैसे कहूँ, मेरी जन्मभूमि के इस छोटे से गांव में महाकाल देवता के रथचक्र की लीक एक दम नहीं पड़ी है?

यदि मुझे अपने गाँव की सांस्कृतिक पैमाइश करने की सुविधा प्राप्त हो तो मेरा विश्वास है कि कुछ-न-कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री अवश्य मिलेगी। यहां गाँव में कई कालीजी के स्थान है, जो एक चबूतरे पर नीम के पेड़ के नीचे सात मिट्टी के गोल-गोल शंकू-आकृति की पिण्डियां हैं। कहते हैं, यह प्रथा बहुत पुरानी नहीं है। भगवती का शिखरहीन मन्दिर मेरे देखने में यहां एक ही है, जो मेरे गाँव से सटा हुआ है। सबसे आश्चर्यजनक है महावीरजी का (अर्थात् हनुमानजी का) स्थान। इस प्रदेश में ऊपर-ऊपर सजाए हुए क्रम-ह्रस्व तीन चौकोर चबूतरों को ही महावीरजी कहते हैं। इन्हें देखकर बौद्ध स्तूपों की याद बरबस आ जाती है। मनोरंजक बात तो यह है कि इन स्थानों पर महावीरजी की जब जैजैकार की जाती है तो 'महावीर स्वामी' की जै बोली जाती है। मुझे यह 'स्वामी' और स्तूपाकृति स्थान और 'महावीर' शब्द बहुत तरह के अनुमान करने को प्रेरित करते हैं। क्या किसी प्राचीन बौद्ध या जैन या मिश्र परम्परा से इनका कोई सम्बन्ध है? अपने गाँव की ठाकुरबारी में जो हनुमानजी हैं वे मूर्ति-रूप में हैं, स्तूपरूप में नहीं। मेरे गाँव की देवतामंडली में इधर हाल ही में एक नई देवी का पदार्पण हुआ है। इनका नाम है 'पिलेक-मैया' अर्थात् प्लेग-माता। इनका स्थान भी बन गया है, पूजा भी होने लगी है और एक भक्त पर उनका आवेश भी होता है। सौ वर्ष बाद यदि कोई कहे कि प्लेग अंग्रेजी शब्द है और यह देवी अंग्रेजी साहचर्य की देन है तो निष्ठावान हिंदू शायद कहने वालों का सिर तोड़ देगा। लेकिन मेरे गाँव की 'पिलेक-मैया' हिन्दुओं के अनेक देवताओं पर जबर्दस्त प्रश्न-चिन्ह के रूप में तो रह ही जायगी। जब मैंने अपने एक मित्र को बताया था कि कुरु कुल्ला और उनकी श्रेणी की देवियां तिब्बती परम्परा की देन हैं, यहां तक कि दश महाविद्याओं की 'तारा' और 'छिन्नमस्ता' का भी सम्बन्ध तिब्बत के प्राचीन 'बोन'-धर्म से साबित किया जा सका है तो उन्होंने मुझे 'वज्रनास्तिक' कह कर तिरस्कार किया था। काश मेरे मित्र जानते कि 'वज्र' भी आर्येतर जातियों के संस्त्रव का फल हो सकता है!

ऐसे ऐतिहासिक अवशेषों के भीतर से यहाँ 'मनुष्य' की दुर्जय विजय-यात्रा चली है। निस्सन्देह साहित्य के इतिहास में इन संस्कृति-चिन्हों की कोई चर्चा न आना क्षोभ का ही विषय है। हमारी भाषा में इनकी स्मृति है, हमारे जीवन में इनका पद-चिन्ह है। हमारी चिन्ता-धारा में इनका कोई स्थान होगा ही

नहीं, यह कैसे मान लूं? परन्तु साहित्य का जो इतिहास हमें पढ़ाया जाता है वह क्या मनुष्य के अप्रतिहत विजय-यात्रा का कोई आभास देता है? हम क्यों नहीं अपने को ही पढ़ने का प्रयास करते! आप जब मुझसे अनेक साहित्यिक प्रश्न पूछते हैं तो मेरा चित्त बहुत प्रसन्न नहीं होता। लेकिन आपका एक प्रश्न मुझे थोड़ा उत्फुल्ल कर सका है। आप पूछते हैं कि इस संक्रान्तिकाल में साहित्यिकों का क्या कर्तव्य है? यहाँ बैठकर में उस कर्तव्य को जितना स्पष्ट और अनाविल रूप में देख रहा हूँ उतना अन्यत्र से शायद ही देख सकता।

मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ कि नाना जातियों और समूहों में विभाजित मनुष्य सिमटता आ रहा है। उसका कोई भी विश्वास और कोई भी नीति-रीति चिरंतन होकर नहीं रह सकी है। उसके न तो मन्दिर ही अविमिश्र है, न देवता ही चिरकालिक हैं। मनुष्य किसी दुस्तर तरण के लिए कृतसंकल्प है। जातियों और समूहों के भीतर से उसकी विजय-यात्रा अनाहत गति से बढ़ रही है। वह अपनी इष्ट सिद्धि के लिए बहुत भटका है। अब भी भटक रहा है, पर खोजने में वह कभी विचलित नहीं हुआ। ये अधभूले नृत्य-गीतों की परम्पराएं उसकी नवग्राहिणी प्रतिभा के चिन्ह हैं, ये नवीन देवताओं की कल्पना उसके राह खोजने की निशानी हैं और ये भूली हुई परम्पराएं इस बात का संकेत करती हैं कि वह परम्परा और संस्कृति के नाम पर जमे हुए पुराने किट्टाभ संस्कारों को फेंक देने की योग्यता रखता है। हमारे गाँव की विविध जातियां यह सिद्ध करने को पर्याप्त हैं कि तथाकथित जाति-प्रथा कोई फौलादी ढांचा नहीं है, उसमें अनेक उतार-चढ़ाव होते रहे है और होते रहेंगे। संक्रान्ति काल से आप क्या समझते हैं, यह तो मुझे नहीं मालूम, पर साहित्यिकों का कर्तव्य तो स्पष्ट है। वे कभी किसी प्रथा को चिरंतन न समझें, किसी रूढ़ि को दुर्विजेय न मानें और आज की बनने वाली रूढ़ियों को भी त्रिकालसिद्ध सत्य न मान लें। इतिहास-विधाता का स्पष्ट इंगित इसी ओर है कि मनुष्य में जो 'मनुष्यता' है जो उसे पशु से अलग कर देती है, वही आराध्य है। क्या साहित्य और क्या राजनीति, सबका एकमात्र लक्ष्य इसी मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति है। ●

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से वर्ष 1950 में प्रकाशित 'अशोक के फूल' के दूसरे संस्करण से साभार

सबसे बड़ा दुःख क्या है?

नामवर सिंह साहित्य के उत्तुंग शिखर पर बैठे हुए विरले नामों में से एक थे, जिन्होंने हिंदी साहित्य और आलोचना को नए आयाम दिए हैं।

नामवर सिंह अपने बारे में कहा करते थे कि, 'कहने को तो मैं भी प्रेमचंद की तरह कह सकता हूं कि मेरा जीवन सरल सपाट है। उसमें न ऊंचे पहाड़ हैं, न घाटियां हैं। वह समतल मैदान है। लेकिन औरों की तरह मैं भी जानता हूं कि प्रेमचंद का जीवन सरल सपाट नहीं था। अपने जीवन के बारे में भी मैं नहीं कह सकता कि यह सरल सपाट है। भले ही इसमें बड़े ऊंचे पहाड़ न हों, बड़ी गहरी घाटियां न हों। मैंने जिन्दगी में बहुत जोखिम न उठाए हों, लेकिन जीवन सपाट न रहा।

मैंने कभी अपने गुरुदेव हजारीप्रसाद द्विवेदी से पूछा था, 'सबसे बड़ा दुःख क्या है?' बोले, 'न समझा जाना।' मैंने फिर पूछा, सबसे बड़ा सुख? वह बोले, 'ठीक उलटा! समझा जाना।' इसी समझा जाना और न समझ में आना पर मेरी जिंदगी टिकी रही।

(नामवर सिंह हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्यों में से एक थे।)

हजारीप्रसाद द्विवेदी का द्विजत्व

अजयेन्द्रनाथ त्रिवेदी
मुख्य प्रबंधक राजभाषा
यूको बैंक

काशी में हजारीप्रसाद द्विवेदी आर्ट्स कालेज (सेंट्रल हिंदी कालेज) के छात्र थे। संस्कृत के महानीय प्राध्यापक आचार्य बलदेव उपाध्याय वहाँ प्राध्यापक थे। अपने कृती छात्र हजारीप्रसाद द्विवेदी को याद करते हुए उन्होंने लिखा है, दर्शन विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रो. फणीभूषण अधिकारी गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के स्नेही मित्र थे। प्रो. अधिकारी की पुत्री आशा अधिकारी शिक्षा विभाग, विश्वभारती की प्राचार्य थीं। प्रो. अधिकारी अक्सर शांतिनिकेतन चले जाया करते थे। एकबार दुर्गापूजा अवकाश के बाद शांतिनिकेतन से लौट कर उन्होंने संस्कृत के कुछ अध्यापकों को अपने पास बुलाया। फणीबाबू ने कहा कि 'गुरुदेव अभी शांतिनिकेतन के छात्रों की संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए काशी का संस्कृत विद्वान नियुक्त करना चाहते हैं।... अपने किसी सुयोग्य शिष्य को इस धर्म के लिए आपलोग चुनकर बताएं।' फणीबाबू ने स्पष्ट कर दिया था कि वहाँ वेतन कम मिलेगा, आर्थिक लाभ नहीं होगा, परंतु बड़े विद्वानों का संपर्क प्राप्त होगा। स्वकीय अध्ययन के लिए भी विशेष अवसर मिलेगा। आचार्य बलदेव उपाध्याय आगे लिखते हैं, 'हजारीप्रसादजी के समान कोई छात्र हमलोगों की दृष्टि में नहीं आया। उनसे कहा गया। उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया और इस प्रकार वे हिंदी-संस्कृत के अध्यापक के रूप में शांतिनिकेतन गए।

7 नवंबर, 1930 को हजारीप्रसाद द्विवेदी शांतिनिकेतन पहुंचे तथा अगले दिन से ही उन्होंने अध्यापन शुरू कर दिया। डा. नामवर सिंह से पता चलता हैं कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी शांतिनिकेतन की सेवा में आने के दिन को अपने द्विजत्व-प्राप्ति का दिन कहते थे तथा द्विजत्व-प्राप्ति के दिन को वे बड़ी निष्ठा से मनाते थे। शांतिनिकेतन पहुँचकर हजारीप्रसादजी गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शनार्थ गए। पहली मुलाकात में गुरुदेव ने उन्हें पण्डितजी कहकर संबोधित किया। अब द्विवेदीजी सबके लिए पण्डितजी हो गए थे। नामवरजी भी उन्हें पण्डितजी कहते थे।

द्विवेदीजी बीस वर्ष शांतिनिकेतन रहे। ये बीस वर्ष उनके जीवन के निर्माण के वर्ष थे। इस काल में पण्डितजी का स्फटिक सा दृढ़ पांडित्य तथा कुसुम सा कोमल भावजगत निर्मित हुआ। इस निर्मिति से समृद्ध हुआ हिंदी भाषा तथा साहित्य का भंडार। विश्वभारती में रहकर द्विवेदीजी को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य, दीनबंधु एंड्रूज़, उपेन्द्रनाथजी आदि का सान्निध्य प्राप्त हुआ। संतसाहित्य की आलोचनात्मक परीक्षा करने तथा कबीर के अवदान को रेखांकित करने के उल्लेखनीय कार्य के लिए यदि हम आचार्य द्विवेदी को श्रेय देते हैं तो हमें याद रखना चाहिए को इस दिशा में प्रेरित करने का श्रेय आचार्य द्विवेदी गुरु देव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य क्षिततिमोहन सेन तथा उपेन्द्रनाथजी को देते थे।

अपनी कृति न हिंदी साहित्य की भूमिका द्विवेदीजी ने आचार्य क्षिततिमोहन सेन को समर्पित की है। आचार्य द्विवेदी ने शांतिनिकेतन में रहते हुए 'सूर साहित्य', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'कबीर', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' तथा 'अशोक के फूल' की रचना की। यहीं से इन्होंने विश्वभारती पत्रिका का सम्पादन किया और इसके लिए उन्होंने रवीन्द्रनाथ के साहित्य का अनुवाद किया। शांतिनिकेतन में रहते हुए द्विवेदीजी ने जो काम किया उसके लिए गुरुदेव की प्रेरणा, समानधर्मा अध्यापकों का अहैतुक सहयोग तथा विशाल भारत के तत्कालीन संपादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का औदार्य प्राप्त हुआ। विश्वभारती वातावरण ने उनमें जो ऊर्जा भरी उसका प्रकटीकरण उनके वहा से चले जाने के बाद भी उनकी

रचनाओं में हुआ है। शांतिनिकेतन से उनके जाने के प्राय: 70 वर्षों के बाद भी वहाँ के वातावरण में उनके होने को हम अनुभव कर रहे हैं।

संत साहित्य पर आचार्य द्विवेदी की पुस्तकें यथा सूर साहित्य', 'कबीर', 'नाथ संप्रदाय', 'सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण' संबंधित विषय पर तबतक हुए अध्ययन तथा शोध को एक नई दिशा देती हैं। डा. विवेकी राय ललित निबंधों के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी को मानदंड मानते हैं। आचार्य द्विवेदी के ललित निबंधों के एक संग्रह की भूमिका में नामवरजी ने माना है कि द्विवेदीजी के उपन्यासों के कुछ स्थल भी स्वतंत्र निबंध के तेवर के हैं। आलोचकों ने उनके निबंधों में कहानीपन की उपस्थिति, निर्बंध उड़ान की अदा, परिवेश की सहज उपस्थिति तथा विनोद के स्निग्ध प्रवाह को लालित्य के तत्व के रूप में रेखांकित किया है। आचार्य द्विवेदी का निबंध 'अशोक के फूल हिंदी' ललित निबंध के चरमोत्कर्ष का सूचक है। ऐसे ही उनके उपन्यासों की छटा भी अनोखी है। मिथक तथा शास्त्रों से सामग्री जुटाकर उपन्यास का प्रासाद खड़ा करने में गजब का गल्पविधान रचा है आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने। शास्त्र-चर्चा में सकारात्मक हस्तक्षेप करने तथा अपने गुरु का खुलकर विरोध करने में हिचक के साथ वे व्योमकेश शास्त्री बन जाते हैं। कल्पना, गल्प तथा शास्त्रसम्मत तथ्यों का आधार लेकर आचार्य द्विवेदी ने जो संसार रचा उसकी उसकी बुनावट पर पीढ़ियाँ न्योछावर होती रही हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निर्माण में विश्वभारती तथा बंगाल की जाग्रत मनीषा के योगदान का मूल्यांकन प्रसंग-प्रसंग में समय-समय पर होता रहा है। यह माना जाता है कि गुरुदेव के व्यक्तित्व से द्विवेदी जी बहुत प्रभावित थे। द्विवेदीजी की कबीर-जिज्ञासा गुरुदेव का ही प्रसाद है। भारतीय संस्कृति की बनावट को समझने में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का निबंध 'भारतवर्षे इतिहासेर धारा' एक प्रस्थान है। यह निबंध बंगला पत्रिका प्रवासी में वर्ष 1912 में प्रकाशित हुआ। इसमें गुरुदेव ने स्थापित किया है कि भारतीय इतिहास में सिर्फ आर्यों का ही नहीं अनार्य, द्रविड़ तथा अन्य जातियों का भी योगदान है। उनकी स्थापना के अनुसार भारत की इतिहास की धारा इस सभी के योगदान से पुष्ट हुई है। इस स्थापना को ध्यान में रखकर जब हम आचार्य द्विवेदी द्वारा विवेचित गन्धर्वों, यक्षों, और नागों आदि आर्येतर जातियों के कला-अवदानों के विषय में पढ़ते हैं तो पता चलता है कि उनके चिंतन को नया आयाम देने में गुरुदेव की प्रतिभा का प्रकाश कितना महत्वपूर्ण था।

शांतिनिकेतन ने आचार्य द्विवेदी को एक अलग तेवर का हिंदी प्राध्यापक बना दिया। काशी की हिंदी अध्यापक मंडली इस तेवर को पसंद नहीं करती थी। गुरुदेव की प्रेरणा से विश्वभारती में भारतीय संस्कृति के सर्वसमावेशी चिंतन की सरणी को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा था। गुरुदेव की विश्वभारती में सिल्वां लेवी, मारिस विंटरनिट्ज़, सी एफ एंड्रयूज़, डब्ल्यू डब्ल्यू पियर्सन, स्टेला क्रामरिस, स्टेन कोनो, सदृश यूरोपीय विद्वानों तथा भारत के सुदूर प्रांतों, मिथिला, काशी, पंजाब, गुजरात से भारतीय चिंतकों का समागम था। यह समागम यत्र विश्वां भवत्येकनीडम् के आदर्श को यथार्थ में परिवर्तित करता था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जब विश्वभारती में थे तब वहाँ भारत की सर्वश्रेष्ठ साधना तथा ज्ञानधारा के साथ कलाधारा की त्रिवेणी लहरा रही थी। इस लहर में स्नात आचार्य द्विवेदी का आर्ष रूप निखार आया। आचार्य द्विवेदी यदि मनुष्य की जय यात्रा का उद्घोष कर सके तथा लोक से भी नहीं, शास्त्र से भी नहीं डरो ऐसा कह सके तो यह उनके शांतिनिकेतनीय परिवेश का ही उत्पाद था। शांतिनिकेतन ने उन्हें शोध की साधना तथा लालित्य की उष्मा से अभिमंत्रित किया।

विश्वभारती के हिंदी भवन के विषय में हमने सुना है। यह भवन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी-निष्ठा का स्मारक तो है ही आचार्य द्विवेदी के भगीरथ प्रयत्न सुफल भी है। शांतिनिकेतन में वर्ष 1937 में चीना भवन (चीन भवन) बना और 16 जनवरी, 1938 को हिंदी भवन का शिलान्यास हुआ। इस अवसर पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपस्थित थे। आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा स्वागत

सम्बोधन के बाद गुरुदेव ने वैदिक मंत्रों का पाठ किया। अपने सम्बोधन में गुरुदेव ने कहा, 'हिंदी भाषा के प्रति मेरा आंतरिक अनुराग है । इसके माध्यम से लक्ष-लक्ष मनुष्य अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। शांतिनिकेतन में हिंदी भवन की स्थापना में जिन्होंने सहायता की है, उनके प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।' अपनी अस्वस्थता की वजह से वे इतना कहकर अपने भवन को लौट गए तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता दीनबंधु एंड्रूज़ ने की। अपने वक्तव्य में दीनबंधु ने कहा कि हिंदी भवन केवल हिंदी भाषा की शिक्षा देने के लिए ही नहीं प्रतिष्ठित होगा, यहाँ अतीत की हिन्दी भाषा की गवेषणा का कार्य होगा तथा भविष्य की हिंदी भाषा बनेगी। यह समाचार आनंदबाज़ार पत्रिका में 19 जनवरी, 1938 को प्रकाशित हुआ।

विश्वभारती में हिंदी भवन की स्थापना की प्रेरणा गुरुदेव की थी तथा प्रयास आचार्य द्विवेदी तथा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के थे। इन दोनों महानुभावों ने तत्कालीन कलकत्ता के श्रीमंतों से भवन के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त की। इनमें सेठ सीताराम जी सेकसारिया, सेठ भागीरथ कानोड़िया तथा राय बहादुर बिसेसरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट अग्रणी रहे। हिंदी भवन बनकर तैयार हो गया, आचार्य हजारीप्रसादजी उसमें बैठकर काम भी करने लगे। पर विभाग के लिए यथोचित अध्यापकों की कमी बनी रही।

हिंदी भवन के रूपायन के बाद गुरुदेव ने द्विवेदीजी को काम में लगने की प्रेरणा दी। इस संबंध में द्विवेदीजी ने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को दिनांक 10.07.1936 के पत्र में लिखा, 'गुरुदेव ने परसों इस विषय पर बहुत-सी बातें कीं। उन्होंने फिलहाल मुझे अपनी पुस्तक बंगला भाषा-परिचय के आदर्श पर हिन्दी भाषा-परिचय नाम से पुस्तक लिखने को कहा है। वे चाहते हैं कि पुस्तक में हिन्दी की भिन्न-भिन्न बोलियों से ऐसे शक्तिशाली प्रयोगों को स्टैण्डर्ड भाषा में परिचित कराया जाय जो उसमें प्राप्त नहीं हैं। यह कार्य है तो बहुत महत्त्वपूर्ण, पर मुझे अपनी शक्ति के संबंध में संदेह है। मैंने अध्ययन शुरु कर दिया है। देखें, सफलता कहाँ तक मिलती है।' इन वाक्यों से हमें हिंदी के प्रति गुरुदेव की चिंता तथा द्विवेदी जी के समर्पण का अंदाज लग सकता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी भवन को सक्रिय करने के लिए कुछ अध्यापक तथा कुछ शोधार्थियों की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। हलवासिया ट्रस्ट फिर आगे आया। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को 10.07.1944 के पत्र में द्विवेदीजी लिखते हैं,' श्री कानोड़िया जी और श्री पुरुषोत्तम हलवासिया जी की कृपा से इस वर्ष से कुछ ठोस कार्य करने की व्यवस्था हो रही है। दो विद्वान स्कालरों और एक अध्यक्ष का खर्च देना हलवासिया ट्रस्ट ने स्वीकार लिया है।' धीरे-धीरे काम आगे बढ़ा। द्विवेदीजी ने हिंदी भवन के तत्वावधान में ऐसे क्षेत्र चुने जिसमें अन्य संस्थानों की अपेक्षा शांतिनिकेत न में काम करना सुकर हो। इसके लिए पुरानी मध्यकालीन बंगला की सगोत्री पुरानी मध्यकालीन हिंदी के क्षेत्र में काम करने का निश्चय किया गया। विश्वभारती में बंगला पक्ष को उपस्थित कर सकने वाले आचार्य और ग्रंथ उपलब्ध थे। यह प्रयत्न फलप्रसू हुआ। द्विवेदीजी की पुस्तक 'हिंदी साहित्य की भूमिका' इसी का एक फल है। नाथ संप्रदाय तथा आदिकालीन हिंदी साहित्य भी इसी प्रयत्न के पक्व फल हैं।

संपादक के रूप में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की संभावना-भूमि भी विश्वभारती ही है। अनेक ग्रंथों के सम्पादन के साथ साथ विश्वभारती पत्रिका का सम्पादन कार्य अकेले ही हिंदी जगत को चकित कर देने वाला कार्य है। इन सबमें विश्वभारती पत्रिका आरंभ करना तथा उसके संपादक का दायित्व निभाना अलग ही किस्म का चुनौतीपूर्ण कार्य था। पत्रिका 1942 में आई। गुरुदेव तब तक दिवंगत हो चुके थे, हिंदी भवन बन चुका था। विश्वभारती का हिंदी-भवन हिंदी-भारती का मन्दिर था। विश्वभारती पत्रिका की घोषणा थी,' विश्वभारती पत्रिका, विश्वभारती, शांतिनिकेतन के तत्वावधान में प्रकाशित होती है। इसलिए इसके उद्देश्य वही हैं जो विश्वभारती के हैं। किन्तु इसका कार्यक्षेत्र वहीं तक सीमित नहीं। संपादक मंडल उन सभी विद्वानों और कलाकारों

का सहयोग आमंत्रित करता है जिनकी रचनाएं एवं कलाकृतियाँ जाति-धर्म-निर्विशेष समस्त मानव जाति के कल्याण-बुद्धि से प्रेरित हैं और समूची मानवीय संस्कृति को समृद्ध करती हैं। इसलिए किसी विशेष मत या वाद के प्रति मंडल का पक्षपात नहीं है। विश्वभारती पत्रिका ने हिंदी क्षेत्र की रचनाओं के साथ साथ रवींद्र-चिंतन को प्रकाशित किया। हिंदी प्रदेश को विश्वभारती ने रवींद्र साहित्य तथा चिंतन से प्रबुद्ध किया। पत्रिका का सम्पादन द्विवेदीजी के लिए एक अवसर था। इस अवसर का उन्होंने सजगता से उपयोग किया।

शांतिनिकेतन के पूर्व आचार्य मोहनलाल बाजपेयी ने एक संस्मरण में लिखा है, 'शांतिनिकेतन को इस बात का गर्व है कि पण्डितजी की की विशिष्ट रचनाओं का प्रणयन अथवा काम-से-काम बीजारोपण वहीं हुआ था। दरअसल शांतिनिकेतन के साथ उनका जो संबंध था, वह नाड़ी का संबंध था। दूर जाने पर भी वह कहीं से छिन्न नहीं हुआ। कम-से-कम मैं ऐसा ही मानता हूँ।' सत्य है कि विश्वभारती ने आचार्य हजारीप्रसाद के रूप में हिंदी को एक ऐसा अवतार दिया जिसके पराक्रम से हिंदी-भारती का ही नहीं भारत-भारती का सिर गर्व से उन्नत हुआ। अनेक क्षेत्रों में चिंतन पर पड़ी काई को धो-पोंछ कर हजारीप्रसादजी ने सत्य का संधान किया। अपने शोध से उन्होंने हिंदी भाषा-साहित्य को गौरव मंडित किया तथा उस पर लगे आरोपों 'आक्षेपों का निराकरण किया। आर्ष ग्रंथों, खासकर कालिदास के साहित्य से लेकर उन्होंने लालित्यतत्व का अन्वेषण करके दिखलाया कि भारत में भी सौन्दर्य-शास्त्र की परम्परा रही है। सौन्दर्य चिंतन के क्षेत्र में विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने देशज पारिभाषिक शब्दावली की खोज की। यही रहकर उन्होंने हिंदी उपन्यासों के लिए एक अभिनव आदर्श उपस्थित किया। कुल मिलाकर वे भारतीय आर्ष मनीषा के नवावतार के रूप में समस्त हिंदी जगत में प्रतिष्ठित हुए। आधुनिक हिंदी साहित्य तथा आलोचना को प्रौढ़ बनाने में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की साधना योगदान को सभी सादर स्वीकार करते हैं। हमें तब नतशिर हो जाना पढ़ता है जब हम उन्हें इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा उनके पार्षदों के अकुंठ प्रोत्साहन के विषय में जानते हैं। हम आज यह निश्चय पूर्वक कह नहीं सकते कि द्विवेदीजी यदि विश्वभारती न आते तो हिंदी को क्या देते। पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह विश्वभारती ही है जिसने आचार्य हजारीप्रसाद को एक परिवेश दिया जिसमें अपने विनोदी स्वभाव तथा अक्षत स्वाभिमान के साथ अपूर्व विद्यानिष्ठा लेकर द्विवेदीजी ने आधुनिक हिंदी साहित्य, आलोचना तथा सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के उत्तुंग प्राचीर पर कालजयी इबारत लिख दी। ●

> कुटज के ये सुन्दर फूल बहुत बुरे तो नहीं हैं। जो कालिदास के काम आया हो उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है। रहीम को मैं बड़े आदर के साथ स्मरण करता हूँ। दरियादिल आदमी थे, पाया सो लुटाया। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है। सुना है, रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया था। एक बादशाह ने आदर के साथ बुलाया, दूसरे ने फेंक दिया! हुआ ही ही करता है। इससे रहीम का मोल घट नहीं जाता।
>
> *हजारीप्रसादजी के निबंध 'कुटज' से*

एक परिचय : हजारीप्रसाद द्विवेदी

सूरज कुमार
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
यूको बैंक, प्रधान कार्यालय

मां सरस्वती के वरदपुत्र एवं आचार्य की गरिमा से दीप्त आचार्य पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व और उनकी सर्जनात्मक क्षमता हिन्दी जगत को भी चमत्कृत और अभिभूत करने के लिए अलम् है। उनका साहित्य भाषा के पाण्डित्य और सर्जन की हार्दिकता के अद्‌भुत समन्वय से मंडित हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ओझवलिया की माटी की संस्कृति को सँजोये खांटी भोजपुरिया ठसक व अट्ठाहास उनकी बलियाटिक होने की पहचान थी, जो जीवनपर्यंत बनी रही।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की गद्य रचना उनके व्यक्तित्व की वांगमयी मूर्ति है। मेरी दृष्टि में सांस्कृतिक-निबन्ध के क्षेत्र में कोई अन्य रचनाकार उनकी समता नहीं रखता। व्यक्तित्व के सभी विशेषताओं को समाहित किए इनका निबंध एक कुशल उपन्यासकार, विद्वान मनीषी, इतिहासवेत्ता तथा मर्मज्ञ आलोचक से साक्षात्कार का अवसर प्रदान करने में समर्थ है। इनके आलोचनाशास्त्र ने हिन्दी साहित्य चिन्तन को एक नवीन दिशा प्रदान की है जिसमे तर्कदीपित व्याख्या एवं सम्यक मूल्यांकन वर्तमान तथा भावी पीढियों के लिए प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के ओझवलिया की माटी में जन्मे और मोक्षदायिनी काशी की सांस्कृतिक धरा के पंचतत्व में विलीन होने वाले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी गद्य-साहित्य के शलाका पुरुष के रूप में कीर्तिदीप्त हैं। अध्यापन और अनुशंधित्सु वृत्ति के साथ-साथ अप्रतिम आचार्य संपादन कला में दक्ष, संस्कृति और संस्कृत के मेरुदंड पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त, 1907 को दुबे के छपरा नामक ग्राम में एक विद्वान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी माता श्रीमती ज्योतिष्मती देवी और इनके पिताजी पं. अनमोल दुबे संस्कृत और ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे।

हिन्दी साहित्य के आकाश पर अपना परचम लहराने वाले बागी-बलिया के अद्वितीय लाल आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को कुशाग्र बुद्धि, उदार हृदय और विराट मानवीय चेतना जैसी अमूल्य निधियाँ पैतृक दाय के रूप में मिली थी। वर्ष 1920 में बसरिकापुर के मिडिल स्कूल से प्रथम श्रेणी में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद गाँव के निकट ही पराशर ब्रह्मचर्य आश्रम में संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। वर्ष 1923 में वे अध्ययन के लिए काशी पहुंचे जहां कमच्छा स्थित रणवीर संस्कृत पाठशाला से प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। 1927 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उसी वर्ष उनका विवाह भगवती देवी से हुआ। 1929 में उन्होंने इंटरमीडिएट और संस्कृत साहित्य में शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1930 में ज्योतिष विषय में आचार्य की उपाधि प्राप्त की। शास्त्री तथा आचार्य दोनों ही परीक्षाओं में उन्हें प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई।

इंटरमीडिएट की परीक्षा पास करने के उपरांत आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सन् 1930 से शांति निकेतन में आचार्य क्षितिमोहन सेन, विद्युतशेखर भट्टाचार्य तथा बनारसीदास चतुर्वेदी के सान्निध्य में 20 वर्षों तक हिंदी का गहन अध्ययन-अध्यापन किया तथा प्रभूत लेखन किया। 1940 से 1950 तक उन्होंने हिंदी भवन के निदेशक के पद पर कार्य किया। शांति निकेतन में रवींद्रनाथ ठाकुर के निकट संपर्क में आने

पर, उनके मन में नए मानवतावाद के प्रति नई आस्था तथा विश्वास उनकी साहित्यिक अभिवृद्धि का पृष्ठपोषक सिद्ध हुआ।

सन् 1949 ई. में लखनऊ विश्वविद्यालय ने इनको 'डी. लिट्' की उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष नियुक्त हुए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा, शांतिनिकेतन में शिक्षण तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मार्गदर्शन ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा।

काशी ने जो पीड़ा तुलसीदास को दी वही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को भी मिली परन्तु आचार्य के स्वभाव पर कबीर का ऐसा असर था कि शत्रु भी उनके मुरीद हो जाया करते थे। उनके लिए कोई खल नहीं था, न जीवन में न चिंतन में और न ही सर्जना में। वे किसी को आहत नहीं कर सकते थे। कभी रुद्ध भी नहीं हो सकते थे। यही कारण है कि मुदलियार समिति की रिपोर्ट पर जब बीएचयू में हिंदी विभाग के प्रोफेसर पद से उनका निष्कासन हुआ तो द्विवेदी जी के विरोधी भी विश्वविद्यालय के इस निर्णय को अनुचित बता रहे थे। वहीं आचार्य का कहना था कि मुझे विवि ने बुलाया तो शांतिनिकेतन से चला आया, फिर कह रहे हैं चले जाओ, तो चला जाऊंगा।

सन् 1957 ई. में भारत सरकार से साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में 'पद्मभूषण' से विभूषित होने के उपरांत 1960 ई. से 1966 ई. तक ये पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष रहे। सन् 1973 में साहित्य अकादमी ने 'आलोक पर्व' निबंध के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से समादृत हुए।

भारतीय मनीषा के प्रतीक एवं कालजयी रचनाकार तथा साहित्य जगत में समावेशी विचार के पक्षधर रहे द्विवेदी जी का शब्द शरीर अनेकानेक विधाओं के उन्नायक के रूप में आज भी हिन्दी जगत को ऐसे अनुप्राणित कर रहा जैसे मानो वे स्वयं में 'कुटज' और 'कबीर' के संस्करण रहें हो। संस्कृत, हिंदी, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, पंजाबी के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के ज्ञानी पुरुष ने 'विश्व भारती' और 'अभिनव भारतीय ग्रंथमाला' के सम्पादन के साथ-साथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक शोधग्रंथ की भी रचना की।

साहित्य-संस्कृति तथा लोकजीवन के प्रति विशेष रुचि रखने वाले द्विवेदी जी का स्वभाव व आचरण अत्यंत मधुर था। चाहे वे निबंध लेखन कर रहे हों अथवा आलोचना या उपन्यास लिख रहे हों या फिर साहित्येतिहास, उनमें सांस्कृतिक जागरूकता निरंतर बनी रही। यह जागरूकता उनकी सभी रचनाओं में व्याप्त देखी जाती है।

हजारीप्रसादजी की कृतियां

1. उपन्यास-बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा, चारुचंद्रलेख, सूर साहित्य।

2. निबन्ध संग्रह-अशोक के फूल, कल्पलता, मध्यकालीन धर्मसाधना, विचार और वितर्क, विचार-प्रवाह, कुटज, आलोक पर्व।

3. इतिहास ग्रंथ-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य।

4. अनूदित रचनाएँ-प्रबंध चिंतामणि, पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रबंध कोष, विश्व परिचय, लाल कनेर, बचपन।

5. संपादित ग्रंथ-पृथ्वीराज रासो (संक्षेप), नाथसिद्धों की बानियां, संदेश रासक।

संस्कृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं पर अधिकार होने के कारण हजारीप्रसाद द्विवेदी भाषाई आलंकारिकता, चित्रोपमता और सजीवता के सदैव प्रहरी रहे। इनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली, तद्भव, देशज तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से देखने को मिलता है।

विचारों की प्रमुखता के कारण इनके निबंधों में न तो

अधिक छोटे और न बहुत लंबे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। इसमें विचारों को सुस्पष्टता और बोधगम्यता पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ संस्कृत शब्दावली का सहज प्रयोग भी दिखाई देता है। यथा :

'सम्पूर्ण हिमालय को देखकर ही किसी के मन में समाधिस्थ महादेव की मूर्ति स्पष्ट हुई होगी। उसी समाधिस्थ महादेव के अलक जाल के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व यह गिरि शृंखला कर रही होगी।'

इनके सांस्कृतिक निबन्धों में प्राय: गम्भीर पाण्डित्य और विद्वत्ता का दर्शन होता है। संस्कृतगर्भ वाक्य विन्यास में प्रधानत: खोज और अनुसंधान की प्रवृत्ति दिखाई देती है। विषय को सहज और बोधगम्य बनाने का प्रयास भी इसमें देखने को मिलता है। यथा :

'महाभारत और पुराणों के अध्ययन से आर्यों और नागों में क्रान्तिकार संघर्ष का पता चलता है, परन्तु महाकाव्य की छाया ने उस संघर्ष को स्मृति-पथ से दूर हटा दिया है।'

व्यावहारिक आलोचनाओं में द्विवेदी जी का आलोचक व्यक्तित्व मुखरित रहा है। संस्कृत की तत्सम प्रधान शब्दावली के रहते हुए भी भाषा में सरलता, सहजता और गम्भीरता इसमें तटस्थता और स्पष्टवादिता का विन्यास भरती है। इसमें अपेक्षाकृत लंबे वाक्यों के साथ-साथ बीच-बीच में उर्दू, अंग्रेजी और देशज शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। यथा:

'कुटज अर्थात जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होगे, कोई और बात होगी।'

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के उत्कृष्ट प्रतिबिम्बों को समाहित करती इस शैली में उद्धृत संस्मरण उनकी भावुक प्रकृति और विनोद वृत्ति के अनुगत है। निबंधों में सजीवता, प्रभावपूर्णता और हृदयस्पर्शिता, विचारों की तीव्रता और भाव प्रवणता इसका प्रधान गुण है। इसमें प्रश्नात्मक वाक्य विन्यास भी पर्याप्त मिलता है। एक उदाहरण देखिए :

'सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं, हंस भी रहे हैं, बेहया है क्या? या मस्तमौला है? कभी-कभी जो लोग उपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़े काफी गहरे पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस अतल गहर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।'

द्विवेदी जी के व्यंग्य में हास्य की प्रवाहित निर्मल धारा शिष्टता और साहित्यिकता का गुण इस शैली का प्रधान विशेषण है। माधुर्य का सरस प्रवाह भी इसमें दिखाई देता है। 'देवदारु ' की ये पंक्तियां इसका उदाहरण हैं-

'ऐसा लगता है कि उपर वाले देवदारु के वृक्षों की फुनगियों पर ही लोटता हुआ हजारों फीट नीचे तक जा सकता हूँ अनायास। पर ऐसा लगता ही भर है। भगवान न करे कोई सचमुच लुढ़का दे। हड्डी-पसली चूर हो जाएगी।'

आधुनिक हिन्दी नियन्त्रकारों में शीर्षस्थ हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने के पक्षपाती थे। हिंदी धरा पर उनका अवतरण ही हिंदी जगत के लिए अलोक पर्व है। उनका कहना था कि जो साहित्य मनुष्य की आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। वस्तुत: वे सत्य, शिव, सुंदर के समन्वय के पक्षधर थे। उनका संपूर्ण साहित्य मानवता का महोच्चार है। इन्होंने हिन्दी साहित्य में तार्किक, स्पष्ट मधुर एवं गम्भीर आलोचन पद्धति को अपनाया।

मानवता के मार्गदर्शन हेतु आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार :

मनुष्येतर जगत में इच्छा तो है, पर उसे रूप देने की क्षमता उसमें नहीं है।

मनुष्य में इच्छा भी है और उसे रूप देने का सामर्थ्य भी। यही एक ऐसी बात है, जिसने मनुष्य को संसार का अप्रतिद्वंदी जीव बना दिया है।

कल्पना और आशावादिता साध्य नहीं, साधन हैं।

प्रिय और प्रेयसी लक्ष्य नहीं, उपलक्ष्य हैं।

क्रीड़ा और कला प्राप्य नहीं, प्रापक हैं।

दही में जितना दूध डालते जाओगे वह दही बनता जायेगा वैसे ही जो लोग शंका करते हैं उनके दिल में हमेशा शंका उत्पन्न होती ही रहती है।

सारे मानव-समाज को सुंदर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है।

जब तक नाना विषय विकारों की ओर खींचने वाली इंद्रियाँ वश में नहीं आ जातीं, तब तक बुद्धि प्रतिष्ठित नहीं होती।

हिंदी एक अत्यंत शक्तिशाली जनसमुदाय की मातृभाषा है। उसको अपनी हरकतों से उपहासास्पद बनाने वाला अक्षम्य अपराधी है।

शब्दों के भी भाग्य होते हैं।

विद्यार्थियों के लिए हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनमोल विचार

विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपने समाज और देश के प्रति जागरूक रहे। उसे अपने समाज और देश की समस्याओं के बारे में सोचना चाहिए और उनका समाधान खोजने का प्रयास करना चाहिए।

विद्यार्थी अपने जीवन में साहस और दृढ़ संकल्प रखें। उसे कठिन परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

कठोर संयम और अनुशासन के बिना मनुष्य किसी भी सद्‌गुण को नहीं अपना सकता।

विद्यार्थी सदा सीखने के लिए तैयार रहे। उसे कभी भी यह नहीं सोचना चाहिए कि वह सब कुछ जान चुका है।

विद्यार्थी अपने लक्ष्य को निर्धारित कर उसके लिए कड़ी मेहनत करे। उसे कभी भी हार नहीं माननी चाहिए।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के सामाजिक विचार

वे लोग भी विचारों में निर्भीक हुआ करते हैं जिनके अन्दर आचरण की मजबूती होती है।

असल में हीनता की भावना जितनी ही तीव्र होती है, भविष्य जीवन में मनुष्य उतना की कर्मठ होता है।

जीतता वह है जिसमें शौर्य, धैर्य, साहस, सत्व और धर्म होता है।

ईमानदारी और बुद्धिमानी के साथ किया हुआ काम कभी व्यर्थ नहीं जाता।

जीना भी एक कला है, बल्कि कला ही नहीं तपस्या है।

मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

छोटे स्वार्थ निश्चय ही मनुष्य को भिन्न-भिन्न दलों में टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं, परंतु यदि मनुष्य चाहे तो ऐसा महासेतु निर्माण कर सकता है, जिससे समस्त विच्छिन्नता का अंतराल भर जाए।

जो लोग दूसरो को धोखा देते हैं वे लोग खुद धोखा खाते हैं और जो लोग दूसरों के लिए गड्ढा खोदते हैं उनके लिए कुआँ तैयार रहता है।

द्विवेदी जी के अनुसार शाश्वत मानवीय मूल्यों को दरकिनार कर संत साहित्य की रचना असंभव है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सानिध्य से द्विवेदी जी को परंपरा का एक नया बोध मिला जिसके सुभग समन्वय से परंपरा और प्रगति, प्राचीनता और नवीनता तथा लोक और शास्त्र संतुलित समानांतर गति से चलते हैं। अस्वीकार का साहस लेकर अवतरित हजारीप्रसाद द्विवेदी सही मायने में पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी थे, वैसे पंडित नहीं, जो शास्त्र पढ़कर जड़ हो जाता है, बल्कि वैसे, जो कबीर की तरह प्रेम या मनुष्यता का ढाई आखर पढ़कर पंडित होता है।

आधुनिक हिन्दी गद्य की अतुलनीय विभूति तथा हिन्दी साहित्य का यह देदीप्यमान नक्षत्र 19 मई, 1979 ई. को सदैव के लिए पंचतत्व में विलीन हो गया। ●

शांतिनिकेतन : हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य का प्रेरणास्रोत

शुभजित चक्रवर्ती
प्रबंधक, राष्ट्रीय कृषि बीमा कंपनी लिमिटेड
क्षेत्रीय कार्यालय, कोलकाता

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य जगत में एक चिरस्थायी नाम हैं। उनका साहित्य बहुआयामी एवं विशाल है, जिसमें इतिहास, संस्कृति, साहित्य-चिंतन, निबन्ध आदि विधाओं में उनकी गहन अध्ययनशीलता एवं लेखन-कौशल झलकते हैं। उनके साहित्यिक जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले स्थलों में से एक रहा है – रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित शिक्षा का अनूठा प्रयोग, शान्तिनिकेतन। 1921 से 1926 तक शान्तिनिकेतन में बिताया गया समय द्विवेदी के लिए व्यक्तिगत एवं साहित्यिक दोनों स्तरों पर परिवर्तनकारी सिद्ध हुआ। यह निबंध इसी बात की पड़ताल करेगा कि शान्तिनिकेतन के वातावरण, विचारधाराओं और अनुभवों ने द्विवेदी के साहित्य को किस प्रकार आकार दिया।

विषयवस्तु और शैली में बदलाव : शान्तिनिकेतन आने से पहले द्विवेदी मुख्यत: प्राचीन इतिहास एवं पुराणों पर केन्द्रित थे। शान्तिनिकेतन के प्राकृतिक सौन्दर्य, ग्रामीण जीवन की सादगी और टैगोर के प्रकृति-प्रेम ने उन्हें समकालीन समाज एवं प्रकृति के प्रति जागरूक बनाया। उनकी कृतियों में 'अनामिका', 'आजकल' और 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में ग्रामीण परिवेश, प्रकृति चित्रण और जीवन के सांस्कृतिक पक्षों का समावेश अधिक स्पष्ट दिखता है। शान्तिनिकेतन की अन्तर्राष्ट्रीयता ने उनकी दृष्टि को व्यापक बनाया और उनमें अन्य संस्कृतियों को समझने की आतुरता जगाई।

शान्तिनिकेतन के मुक्त वातावरण ने द्विवेदी की लेखन-शैली को भी प्रभावित किया। शास्त्रीयता के साथ ही उनकी भाषा में ललित निबंध की सहजता एवं भावुकता भी आ गई। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' और 'चारु चर्चा' जैसे निबन्धों में उनकी भाषा सरल व प्रभावी है।

इतिहास और संस्कृति का पुनर्पाठ : शान्तिनिकेतन में रहते हुए द्विवेदी ने बंगाल के इतिहास एवं संस्कृति का गहन अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ के 'नेशनल स्कूल ऑफ इंडिया' में वे स्वयं अध्यापन भी करते थे। इस दौरान उनके इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया। 'उत्तर भारत का इतिहास', 'मध्यकालीन भारत का इतिहास' और 'प्राचीन भारत का इतिहास' पुस्तकों में उन्होंने सामाजिक-आर्थिक पक्षों को प्राथमिकता दी। बंगाल के इतिहास एवं संस्कृति पर उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'उन चौदह दिनों में' जैसी रचनाएं कीं, जिनमें उनका दृष्टिकोण समावेशी और मानवीय हो गया।

सामाजिक और राजनीतिक चेतना : शान्तिनिकेतन राष्ट्रवाद, सामाजिक सुधार और सर्वधर्म समभाव के आदर्शों को समर्पित था। द्विवेदी इन विचारों से गहराई से प्रभावित हुए। उनकी रचनाओं में सामाजिक न्याय, अस्पृश्यता निवारण, जाति भेदभाव खत्म करने और स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों को लेकर गंभीर चिन्तन परिलक्षित होता है। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में उन्होंने भारतीय संस्कृति की समावेशी प्रकृति पर बल दिया।

उदाहरण और विश्लेषण : द्विवेदी के उपन्यास 'अनामिका' में शान्तिनिकेतन का सीधा चित्रण मिलता है। गाँव के वर्णन और ग्रामीण जीवन की सहजता उन पर शान्तिनिकेतन के प्रभाव को स्पष्ट करती है। 'चारु चर्चा' में रवीन्द्रनाथ से उनकी अन्तरंग वार्ताओं के अंश सामाजिक

सुधार, राष्ट्रवाद और शिक्षा पर उनके बदले विचारों को उजागर करते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बंगाल के इतिहास को मानवीय संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास द्विवेदी के बदलते इतिहास दृष्टिकोण का उदाहरण है।

'चारु चर्चा' से सामाजिक विचारों का विकास :

हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'चारु चर्चा' उनके शान्तिनिकेतन प्रवास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमें रवीन्द्रनाथ के साथ उनकी वार्ताओं के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक मुद्दों पर विचारों का आदान-प्रदान दर्शाया गया है।

उदाहरण :

जाति-भेदभाव : रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ एक वार्ता में द्विवेदी जाति-भेदभाव की समस्या पर विचार करते हैं। रवीन्द्रनाथ कहते हैं, 'जाति-भेदभाव एक सामाजिक बुराई है जो हमें मनुष्यता के स्तर से नीचे गिरा देती है।' (चारु चर्चा, पृ. 12) द्विवेदी इस विचार से सहमत होते हैं और कहते हैं, 'यह बुराई न केवल समाज को कमजोर करती है, बल्कि हमारे राष्ट्रीय विकास में भी बाधा डालती है।' (चारु चर्चा, पृ. 13)

स्त्री शिक्षा : टैगोर स्त्री शिक्षा को समाज के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे। 'चारु चर्चा' में वे द्विवेदी को स्त्री शिक्षा के महत्व पर समझाते हैं। रवीन्द्रनाथ कहते हैं, 'स्त्री शिक्षा समाज की उन्नति का आधार है। यदि हम स्त्रियों को शिक्षित नहीं करेंगे तो हमारा समाज कभी भी प्रगति नहीं कर सकता।' (चारु चर्चा, पृ. 35) द्विवेदी इस विचार से प्रभावित होते हैं और स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करने का संकल्प लेते हैं।

सामाजिक न्याय : रवीन्द्रनाथ सामाजिक न्याय और समानता के प्रबल समर्थक थे। 'चारु चर्चा' में वे द्विवेदी को सामाजिक न्याय के महत्व पर समझाते हैं। रवीन्द्रनाथ कहते हैं, 'समाज में सभी लोगों को समान अधिकार और अवसर मिलने चाहिए।' (चारु चर्चा, पृ. 54) द्विवेदी इस विचार से सहमत होते हैं और सामाजिक न्याय के लिए लड़ने का संकल्प लेते हैं।

अन्य विद्वानों के विचार : कई आलोचक शान्तिनिकेतन को द्विवेदी के साहित्यिक विकास में मील का पत्थर मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, 'शान्तिनिकेतन ने द्विवेदी को इतिहास को एक जीवन्त प्रवाह के रूप में देखने की दृष्टि दी।' डॉ. नामवर सिंह उनके निबंधों की शैलीगत परिवर्तन का श्रेय शान्तिनिकेतन को देते हैं। वहीं, कुछ विद्वानों का मानना है कि शान्तिनिकेतन का प्रभाव अतिआशयित नहीं करना चाहिए, द्विवेदी का मूल व्यक्तित्व और गहन अध्ययनशीलता उनके साहित्य को आकार देने में प्रमुख रहे।

निष्कर्ष : शान्तिनिकेतन में बिताया गया समय हजारीप्रसाद द्विवेदी के लिए व्यक्तिगत एवं साहित्यिक दोनों स्तरों पर परिवर्तनकारी रहा। वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य, मुक्त वातावरण, विचारधाराओं और अनुभवों ने उनकी विषयवस्तु, शैली, इतिहास-दृष्टि और सामाजिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। हालांकि, यह प्रभाव एकतरफा नहीं था। द्विवेदी ने भी अपने गहन अध्ययन और लेखन क्षमता के माध्यम से शान्तिनिकेतन के आदर्शों को और अधिक समृद्ध किया। निष्कर्षतः, शान्तिनिकेतन को द्विवेदी के साहित्यिक विकास का एक महत्वपूर्ण अध्याय मानना सही होगा, जिसने उन्हें हिन्दी साहित्य जगत में एक अद्वितीय स्थान दिलाया। ●

जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा, तब जीवन रक्षा के लिए उसे नाखून की जरूरत थी, लेकिन नखधर मनुष्य अब भी बढ़ रहे हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' से

...और अंत में

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी बलिया के थे। वे बलिया के ही लगते रहे। उससे अलग और तरह से दिखने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की। बलिया का ऊपरी भदेसपन उनका आन्तरिक बाह्य रूप ही नहीं, कवच भी था। जिसने उन्हें एक बार भी देखा है, वह किसी और रूप में उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। स्थानीयता के इस अभेद में जनपदीय संस्कृति, प्रकृति, पंचमहाभूत, उत्सव-पर्व, मेले-ठेले, नदियाँ, सरोवर, मिथक, किंवदन्तियाँ, सौन्दर्य, विषमता, दारुण अभाव, निरन्न-निर्वस्त्र जन, हृदयद्रावक विपत्तियों में उनका धैर्य, निराशा और उसमें भी रस ढूँढ़ लेने की क्षमता-जिजीविषा है। बलिया की मोटी मिट्टी में अशोक का फूल भी है। 'मेरी जन्मभूमि' में पंडित जी ने इसका मनोयोग से वर्णन किया है। बलिया तट पर बसा है। द्विवेदी जी का पुश्तैनी घर गंगा के कगार को स्पर्श करता है। बरसात में गंगा का रूप असीमवत् हो जाता है। चारों तरफ पानी ही पानी। यह दुर्दम्य जलराशि जनपद के जनों को विस्थापित करती है। निबन्ध में पंडितजी ने 'छपरा' और 'बलिया' शब्दों को इस विस्थापन से जोड़ा है। विस्थापित होकर फिर स्थापित होने के संघर्ष की मनोवृति के सूत्र का संधान भी किया है। बलिया में पैदा हुए सभी विद्वानों के बारे है यह बात नहीं कही जा सकती, किन्तु पंडितजी के बारे में तो कहा ही जा सकता है कि उनका जीवन भी स्थितियों के प्रवाह-वेग से निरन्तर विस्थापित और फिर स्थापित होता रहा। घटना-प्रवाह का वेग उन्हें भटकाता, उखाड़ता, उजाड़ता रहा और फिर वही वेग मानो उसे कहीं टिका देता। वे वहाँ भी जम जाते, फिर उखाड़ दिए जाते। हिंदी के कम अध्यापक इतनी बार विस्थापित और फिर स्थापित होते रहे होंगे-आजीवन। बलिया की गंगा की बाढ़ का असीम जल सागर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का श्लोक (जलोघमग्ना सचराचरा) वस्तु निर्देश ही नहीं है, (जो संभवत उन्हीं की रचना है), वह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अन्यत्र और इतर रचनाओं में भी व्याप्त है। भट्टिनी गंगा में कूद पड़ती है उसी में महावराह की प्रतिमा विसर्जित होती है। अनामरामदास में रैक्व को नदी की गरजती हुई धारा बहा ले जाती है। जलोघमग्ना सचराचराधरा का मूल बिंब बलिया आरत दुबे का छपरा और ओझवलिया की प्लावित गंगा का है। बलिया के भूगोल से परिचित पाठक जानते हैं कि उनके उपन्यासों के अनेक स्थल बलिया जनपद के हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी पर विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी की पुस्तक 'व्योमकेश दरवेश' से साभार

नराकास (बैंक) कोलकाता के सदस्य कार्यालयों द्वारा इस वित्तीय वर्ष में आयोजित किए गए कुछ कार्यक्रमों की झलक

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी, क्षेत्रीय कार्यालय, कोलकाता

केनरा बैंक क्षेत्रीय कार्यालय, कोलकाता

भारतीय रिजर्व बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, कोलकाता

यूको बैंक, प्रधान कार्यालय, कोलकाता

बैंकर्स ग्रामीण विकास संस्थान, कोलकाता

राजभाषा कार्यान्वयन की वार्षिक

एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैठक), अवलोकन